Artistic Narration, Vol. VIII, 2017, No. 2: ISSN (P) : 0976-7444 (e) : 2395-7247Impact Factor 3.9651 (ICRJIFR)
UGC Approved Journal No. 43285

वैदिक काल मे 'साम' संगीत का स्वरूप

डॉ0 गीता शर्मा
प्रवक्ता, संगीत गायन, आई0 एन0 पी0 जी0 कॉलिज, मेरठ

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ0 गीता शर्मा ,
वैदिक काल मे 'साम' संगीत का स्वरूप,
Artistic Narration 2017,
Vol. VIII, No.2, pp.1- 6
http://anubooks.com/
?page_id=485

सारांश

वैदिक युग के साहित्य को भारतीय संस्कृति का प्राचीनतम साहित्य माना जाता है। भारतीय संस्कृति का सर्वप्रथम रूप इसी युग के साहित्य में उपलब्ध होता है। चार वेद है –ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, एवं अथर्ववेद। वैदिक साहित्य में संहिताएॅ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और कल्पसूत्र–सहित छहों वेदांगों को रखा गया है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने इससे अलग भी अपने–अपने मतानुसार वैदिक साहित्य का वर्गीकरण किया है। मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य के चार युग माने है–छान्दस् युग–'ऋग्वेद, के छन्द अथवा मंत्रों की रचना, मंत्र युग–इसयुग में मन्त्रों की चार संहिताओं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में संकलित किया गया है। सारा वैदिक साहित्य 'साम को संगीत मानता है और भारत का सारा संगीत शास्त्र ''साम' को संगीत का आधार मानता है।

वैदिक सामगान अथवा शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में और किसी न किसी स्थिति में अवश्य ही था। सामगान जो हमारा सबसे प्राचीन शास्त्रीय संगीत माना जा सकता है, को भी लोक संगीत आधार प्रदान करता है । इस प्रकार यह कहना भी स्वाभाविक ही लगता है कि जिस प्रकार सामगान लोक–संगीत से प्रभावित हुआ, उसी प्रकार लोक संगीत भी सामगान अथवा इससे सम्बन्धित शास्त्र से प्रभावित हुआ और दोनों के एक दूसरे पर प्रभाव के परिणाम स्वरूप तथा लोगों की रूचि, समय, की आवश्यकता और विद्वानों की विद्वता व क्रियात्मक प्रवृत्ति के कारण ही संगीत के अनेंक रूपों और अनेक गायन–वादन की शैलियों का निर्माण हुआ।

वैदिक काल मे 'साम' संगीत का स्वरूप

डॉ0 गीता शर्मा

वैदिक युग के साहित्य को भारतीय संस्कृति का प्राचीनतम साहित्य माना जाता है। भारतीय संस्कषति का सर्वप्रथम रूप इसी युग के साहित्य में उपलब्ध होता है। चार वेद है –ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, एवं अथर्ववेद। वैदिक साहित्य में संहिताऍ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और कल्पसूत्र–सहित छहों वेदांगों को रखा गया है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने इससे अलग भी अपने–अपने मातानुसार वैदिक साहित्य का वर्गीकरण किया है। मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य के चार युग माने है–छान्दस् युग–'ऋग्वेद, के छन्द अथवा मंत्रों की रचना, मंत्र युग–इसयुग में मन्त्रों की चार संहिताओं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में संकलित किया गया है। ब्राह्मण युग– इस युग में ब्राह्मण ,आरण्यक, और उपनिषदों की रचना हुई । सूत्र युग इस युग में सूत्र गन्थों, कल्पसूत्रों और अन्य वेदांगों की रचना हुई।[1] प्रो0 विण्टरनिट्स ने वैदिक साहित्य को तीन भागों में बॉटा है चारो संहिताऍ, ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ तथा उपनिषद् ग्रन्थ।[2] इन्होंने सूत्र ग्रन्थों और वेदागों को वैदिक साहित्य में स्थान नहीं दिया है बल्कि उनहे वैदिक साहित्य से सम्बन्धित साहित्य में रखा है। डॉ कीथ ने सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को तीन भागों में बॉटा है। प्रथम वर्ग में ऋग्वेद के प्राचीन मन्त्रो को रखा गया है। द्वितीय वर्ग में ऋग्वेद के अर्वाचीन मन्त्र यथा– साम यजुस और अथर्व–सहित ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों को रखा गया है, तथा तृतीय वर्ग में सौत्र–सूत्र और गष्ह –सूत्र को रखा गया है।[3] इस प्रकार अनेक विद्वानो ने अपने अपने मत से वैदिक साहित्य का विभाजन किया है। सारा वैदिक साहित्य 'साम को संगीत मानता है और भारत का सारा संगीत शास्त्र ''साम' को संगीत का आधार मानता है।

यद् उ एतद् सा च अमश्च समवदतां तत्साम अभवत्

तत्साम्न, सामत्वम

अर्थात 'सा' और अम्' का जब संवाद होता है, तब 'साम' हो जाता है । यही 'साम का सामत्व है । इसी बात को बृहदारण्यक उपनिषद ने इस प्रकार कहा है – 'एषाउ एव साम' जैमिनीय उपनिषद में भी यही बात थोड़े से भिन्न शब्दों में कही गई है । द्वयं वावेदमग्र–आसीत सच्चैवासच्च । तयोर्यत सत् तत् साम तन्मन – स प्राणः । अथ तदसत् सर्क , सा वाक सोष्पान अर्थात 'साम ब्राह्मा के विश्व रूपी संगीत का द्योतक है। ऐसा भी माना जाता है कि मेय मंत्रों का एक विशेष नाम है। 'सामन'। उसी के नाम से इस संहिता का नाम सामवेद हुआ। साम की अन्य भी कई प्रकार की उत्पत्ति बताई गई है। भानु जी दीक्षित ने अमरकोश की टीका में कहा है–स्यिति पापम् इति साम्।[3] अर्थात जो पाप को काट दे वह साम है। अन्य विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बताई है।–सामयति इतिसामा....। अर्थात 'साम' इसलिए साम है कि वह मानव का दैवी शक्तियों से संवाद सम्पन्न करता है अथवा वाक् और प्राण में संवाद स्थापित करता है। 'जैमिनीय सूत्र' के अनुसार गीत को 'साम' कहा गया है।[4] छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार साम की गति स्वर है। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार– 'तस्य हैतस्य साम्बो चः स्व वेदं भवति हास्य स्तुं तस्य स्वर एवं एवमं।[5] अर्थात जो 'साम' के 'स्व' को जानता है, उसे 'स्व' प्राप्त होता है। शतपथ– ब्राह्मण ने भी इस बात को दोहराया है। – तस्य – साम्नः स्वर एवं एवम्। अर्थात 'साम' का 'स्व' स्वर ही है।

सामवेद के संहिता–पाठ में पॉच प्रकार के स्वरों का वर्णन मिलता है– उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय और सन्नतर। प्रचय और सन्नतर एक प्रकार से स्वरित के कही अंग हैं।

'नारदीय शिक्षा' में ''साम–के स्वरों का नामोल्लेख इस प्रकार किया गया है–प्रथमश्च द्वितीयश्च तष्तीयोष्मथ चतुर्थकः। मन्द्र क्रुष्टों हयूतिस्वार एतान कुर्विन्ति सामगाः।[6] अर्थात प्रथम, द्वितीय , तष्तीय, चतुर्थ , मंद्र, क्रुष्ट और अतिस्वार आदि स्वरों के माध्यम से 'साम' का गान किया जाता है। यहॉ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रथम, द्वितीय, तष्तीय और चतुर्थ इन चार स्वरों के नाम संख्या–वाचक है और मंद्र क्रुष्ट और अतिस्वार इन तीनों स्वरों के नाम वर्णनात्मक शब्द हैं। इन दो प्रकार के स्वरों से सामग्राम के विकास का संकेत मिलता है । वैदिक काल के प्रारम्भ में स्वरों की संज्ञा 'यम' थी। बर्नेल द्वारा सम्पादित 'सामविधान ब्राह्मण पर सायण ने स्पष्ट कहा है – 'क्रुष्टादय एव यमा उच्चन्ते।' अर्थात क्रुष्ट आदि स्वर ही 'यम' कहलाते है। इन 'यम' अथवा स्वरों के एक विशिष्ट समूह को ही 'सामग्राम 'कहा गया है। सामग्राम का स्वरूप इस प्रकार है– क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तष्तीय, चतुर्थ, मंद्र एवं अतिस्वार। यहॉ यह बता देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि सामग्राम अवरोही क्रम का था । वैदिक काल में ही स्वरों की षड्ज, ऋषभ तथा गान्धार आदि संज्ञाऍ प्रचार में आ गई थी। प्रतिशाख्यों में तो इनका प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है। आदि में 'सामवेद' के यमों के नाम क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय आदि ही थे। आगे चलकर वैदिक विद्वानों ने दो प्रकार की संज्ञाओं का प्रयोग किया। सामग क्रुष्ट आदि संज्ञाओं का प्रयोग न करके षड्ज आदि का प्रयोग करने लगे और षड्ज आदि लौकिक तथा क्रुष्ट आदि प्राचीन वैदिक काल के स्वर माने जाने लगे । नारदीय शिक्षा' के अनुसार, सामगों का प्रथम स्वर वेणु अथवा वंशी का मध्यम स्वर है। जो उनका द्वितीय स्वर है, वह वेणु का गान्धार स्वर है, जो उनका तष्तीय स्वर है , वह वेणु का ऋषभ स्वर है जो चर्तुथ स्वर है, वह वेणु का षड्ज स्वर है। उनका पंचम स्वर वेणु का धैवत स्वर है, छठा स्वर वेणु का निषाद और सातवॉ स्वर वेणु का पंचम स्वर है। 'नारदीय शिक्षा' के अनुसार सामग्राम का स्वरूप इस प्रकार है म ग रे स. ध. नि. प.।

सामग्राम के स्वर आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के काफी और कर्नाटक संगीत के खरहरप्रिया के स्वरों से मिलते –जुलते हैं। अर्थात सामग्राम में गांधार और निषाद स्वर कोमल थे वे शेष पांच स्वर शुद्ध थे। सामग्राम अथवा ' सामवेद का विकास होने पर विकृत स्वर भी प्रचार में आ गये । शिक्षा–ग्रन्थों में विकृत स्वरों का स्पष्टतः उल्लेख मिलता है। अतः स्पष्ट है कि 'साम' का गान केवल सात शुद्ध स्वरों में ही परिसीमित नहीं था, अपितु, उसमें विकृत स्वरों का भी प्रयोग होता था। ' सामविधान ब्राह्मण और शिक्षा –ग्रन्थों में इस बात का वर्णन मिलता है कि सामगान का विकास होने पर उसके 'यम' अथवा स्वर तीन स्थानों में प्रयुक्त होने लगे। ' तैत्तिरीय प्रतिशाख्य ' में कहा गया है –मंद्रादित्रिषु स्थानेषु सप्तसप्तयमाः।[7] अर्थात मन्द्र आदि तीनों स्थानों के क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ मंद्र व अतिस्वार आदि सात–सात स्वर होते हैं। वैदिक काल में इनको मंद्र , मध्यम एवं उत्तम कहते थे और वर्तमान समय में इनको मंद्र, मध्य एवं तार के नाम से जाना जाता है। सामगान में स्वर के लगाव का बहुत महत्व था। इसको 'श्रुति–जाति ' कहते थे।

यहॉ पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि यहॉ श्रुति का अर्थ स्वर के विशिष्ट लगाव से है, न कि 22 श्रुतियों से। 'श्रुति–जाति ' का अर्थ है –स्वर के लगाव का विशिष्ट प्रकार। इनकी संख्या पॉच मानी गई है इनके चिन्ह भी 'सामवेद के स्वरांकन में मिलते है । 'नारदीय शिक्षा' में कहा गया है कि दीप्ता, आयता, करूणा, मष्दु तथा माघ्य श्रुतिजातियों का जो विशेषज्ञ नहीं है, वह आचार्य कहलाने का अधिकार नही है।[8]

सामों के यथार्थ रूप की सुरक्षा के लिए सामयोनि –मन्त्रो में संगीतानुकूल शाब्दिक परिवर्तनों की अपेक्षा होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ शाब्दिक विकार सम्पादित किये जाते हैं जो इस प्रकार हैं– विकार, विश्लेषण,विकर्षण, अभ्यास, विराम तथा स्तोभ इत्यादि।[9] अगर साधारण अर्थो में समझा जाये तो कह सकते हैं कि सामगान के लिए 'ऋग्वेद' के मन्त्रों का यथावत प्रयोग नहीं किया जाता । प्रायः मन्त्रों मे कुछ परिवर्तन करके इनका ज्ञान किया जाता है। इन्ही को विकार कहते हैं , जिनकी संख्या छह है । इनका वर्णन एवं पहचान इस प्रकार हैं। विकार– अर्थात अक्षर में फेरबदल करके गाना , विश्लेषण : अर्थात शब्द का खण्ड–खण्ड करके परिवर्तित रूप में गाना, विकर्षण विशिष्ट प्रकार के कर्षण करके अथवा खींचकर गान तथा अक्षर के स्वर को लम्बा करके गाना। अभ्यासः अर्थात पुनरावृत्ति करना, बार–बार उच्चारण करना। विराम : अर्थात थोड़ी विश्रान्ति देकर , रूक–रूककर गाना। स्तोभः ऋचा के जो अक्षर है , उनके अतिरिक्त उनसे विलक्षण अक्षरों का प्रयोग 'स्तोभ' कहलाता है। ये अक्षर उद्गारवाचक होते हैं।यहॉ एक बात की और विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है कि जैमिनी ने 'गीति' को एक 'ज्ञान –क्रिया ' के रूप में प्रयुक्त किया है और उसके आधार पर ऋचाओं में परिवर्तन करके उनको गाने के योग्य बनाए जाने का संकेत दिया हे। यह तथ्य कहीं न कहीं इस बात को तो प्रमाणित करता ही है कि सामगान से अलग अन्य प्रकार का संगीत भी उस काल में आदर सहित प्रचलित था। साथ ही यह भी प्रमाणित हो जाता है कि आम समाज में प्रचलित संगीत का प्रभाव भी सामगान के ऊपर था और इसके साथ यह अनुमान लगाना भी गलत न होगा के सामगान जो कि मूल रूप से शास्त्रीय संगीत का प्रतिनिधित्व करता है, का प्रभाव भी लोक में प्रचलित संगीत पर पड़ा । अतः स्पष्ट हो जाता है कि साम और लोक संगीत के संसर्ग, साधारण समाज की रूचि और विद्वानों की शास्त्रीय एवं क्रियात्मक परम्परा के परिणाम स्वरूप ही 'साम की विभिन्न शाखाओं एंव अन्य भी अनेक प्रकार की गायन–शैलियों का उद्भव एवं विकास हुआ।

'साम' का गान किस प्रकार किया जाता है, इसको समझने के लिए सामगान के स्वरांकन या स्वरलिपि को समझना होगा। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि 'साम' का ग्राम अवरोही क्रम का था, जो कि मघ्यम से प्रारम्भ होता था।

'साम' के स्वरों को व्यक्त करने के लिए अंकों का प्रयोग किया जाता है,10 'यथा–

1	2	3	4	5	6	7
म	ग	रे	स	ध़.	नि़.	प.

ये अंक मन्त्रों के ऊपर अंकित होते हैं । सामगान का यह आवश्यक नियम है कि पहले अक्षर के सिरे पर जो अंक होता है, उसके द्वारा सूचित स्वर आरम्भिक स्वर हो जाता है। साम–अक्षरों के ऊपर

स्वरांकन स्वरों की शुद्धावस्था को सूचित करता है[11] और अक्षरों के मध्य स्वराकंन स्वरों की विकृतावस्था को सूचित करता है। प्रत्येक प्रारम्भिक स्वर को षड्ज भाव से लेना चाहिए । श्री लक्ष्मणशंकर भंट्ट ने स्पष्ट ही लिखाहै। –प्रत्येक षड्जभावेन[12] अर्थात साम का प्रथम स्वर ही आधार–स्वर अथवा की नोट होगा। भिन्न भिन्न स्वरों को आरम्भिक स्वर मानकर गाने से साम–गायकों को प्रायः कई स्वर मिल जाते थे। केवल इनका अलग से नामकरण नहीं हुआ था। क्रुष्ट स्वर सबसे ऊँचा समझा जाता हे और अतिस्वार्य सबसे नीचा । अतः प्रायः इनसे गान प्रारम्भ नही होता था। वात्स्ययान का मत है– ' अतिस्वारेण क्रुष्टेन प्रारम्भो न कदाचान । अर्थात अतिस्वार और क्रुष्ट स्वर से गान का कभी भी प्रारम्भ नही होता । ऋचा के सिरे पर अंक के साथ यदि 'र' अक्षर अंकित हो, तो उसका अर्थ यह है कि उस अक्षर का स्वर दीर्ध है, अर्थात वह अक्षर दो मात्रा तक खींचा जाएगा । यदि किसी अक्षर के बाद अवग्रह हैं, तो वह अक्षर का दीर्धत्व सूचित करता है । अर्थात उस अक्षर का उच्चारण दो मात्रा–काल तक होगा। 'उ' उच्च का और'क' नीच का द्योतक है ।किसी अक्षर के ऊपर चिन्ह यह सूचित करता है कि स्वर को बढ़ाना है यदि ' ए' चिन्ह हे तो उसका अर्थ है कि पूर्ववर्ती वर्ण की ध्वनि अग्रिम अवग्रह तक जारी रखनी है।[13] दो खड़ी रेखाओं के बीच का भाग 'पर्व' कहलाता है । एक पर्व को प्रायः एक सॉस में गाते है । प्रत्येक 'साम' के पूर्व प्रणव या ओम का गान होता है। इस प्रकार हमने देखा कि सामगान की एक विशिष्ट स्वरांकन–पद्धति थी। अगर आज की स्वरांकन–पद्धति को इसी स्वरांकन–पद्धति का संवर्द्धित एवं परिवर्तित रूप माना जाये जो गलत नहीं होगा।

सामगीत के प्रायः पांच भाग होते हैं। ये पॉच 'भक्तियॉ कहलाती है। यहॉ भक्ति का अर्थ 'भाग' है ये पॉच भाग इस प्रकार हैं – हुंकार अथवा हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार व निधन । 'साम' के तीन गायक होते हैं– प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता। मुख्य गायक उद्गाता होता है तथा प्रस्तोता एवं प्रतिहर्ता उसके साहयक होते हैं । तीनो मिलकर 'हुॅ' का एक स्वर में उच्चारण करते है इसके बाद प्रस्तोता सामगीत के प्रस्ताव –भाग को ओंकार के सहित गाता है । इसको गीत के मुखडे के समान समझा जा सकता है इसके बाद उद्गाता'उद्गीथ' नामक भाग का गायन करता है। उद्गीथ का अर्थ है – ऊॅचा गान और उद्गाता का ऊॅचा गाने वाला। इसके बाद प्रतिहर्ता उद्गीथ के अन्तिम पद से गान को पकड़ता है। और प्रतिहार भाग को लेकर चलता है।

अन्तिम भाग या भक्ति को निधन कहते है। 'निधन का अर्थ है –गीत का उपसंहार या अन्तिम भाग । निधन भाग को प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता तीनों एक साथ गाते हैं। निधन के बाद प्रायः सभी गायक एक साथ 'ओम' का स्वरोच्चारण करते है । ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि कालान्तर में प्रबन्ध या ध्रुपद के गाने में हिंकार का विकास नोम –तोम में हुआ, प्रस्ताव का उद्ग्राह या स्थायी में, उद्गीथ का अन्तरे में प्रतिहार का संचारी में और निधन का आभोग में । वर्तमान समय में सामगान के साथ किसी वाद्य का वादन नहीं होता, किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन काल में सामगान के साथ वीणा बजती थी। वेदों के छन्द 'अक्षर'–गणना के अनुसार है। वैदिक छन्द शास्त्र में 'अक्षर' शब्द से व्यंजनरहित स्वतंत्र स्वर और व्यंजनसहित स्वर दोनों समझा जाता है। वेद के छन्दों की अक्षर–गणना में केवल स्वर की गणना होती है। वेदों में प्रधान छन्द गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुभ, बृहति, पंक्ति त्रिष्टुभ् और जगती है। 'सामवेद के 'संहिता–पाठ में प्राय : यही छन्द मिलते है। बिना लय के गान नही हो सकता

। सामगान में लय को सुनिश्चित करने के लिए तीन मात्राओं को प्रयोग किया जाता था– ह्रस्व , दीर्घ व प्लुत । हस्व एक मात्रा का होता था, दीर्ध दो मात्राओं का और प्लुत तीन मात्राओं का कालन्तर में यही छन्द विभिन्न तालो का आधार बने।।

वैदिक सामगान अथवा शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में और किसी न किसी स्थिति में अवश्य ही सामगान जो हमारा सबसे प्राचीन शास्त्रीय संगीत माना जा सकता है, को भी लोक संगीत आधार प्रदान करता है । इस प्रकार यह कहना भी स्वाभाविक ही लगता है कि जिस प्रकार सामगान लोक–संगीत से प्रभावित हुआ, उसी प्रकार लोक संगीत भी समादान अथवा इससे सम्बन्धित शास्त्र से प्रभावित हुआ और दोनों के एक दूसरे पर प्रभाव के परिणाम स्वरूप तथा लोगों की रूचि, समय, की आवश्यकता और विद्वानों की विद्वता व क्रियात्मक प्रवृत्ति के कारण ही संगीत के अनेंक रूपों और अनेक गायन–वादन की शैलियों का निर्माण हुआ।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रो0 मैक्समूलर, हिस्ट्री ऑफ एन्सिएण्ट संस्कृत–लिटरेचर, पृ0 36
2. प्रो0 विण्टरनिट्स, प्राचीन भारतीय साहित्य, प्रथम भाग, प्रथम खण्ड, पृ0 43, 44
3. डा0 कीथ, रिलीजियन एण्ड फिलौसफ़ी ऑफ वेदाज, खण्ड1, पृ0 1
4. ऋग्वेद, 1/85/10 पर सायण भाष्य के अनुसार।
5. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ 39
6. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ 41
7. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ 54
8. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 55
9. डा0 शरचन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 78
10. डा0 शरचन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 96
11. डा0 शरचन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 97
12. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 68
13. डा0 शरचन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 97